श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ※ श्रीमते रामानन्दाय नमः

श्री सर्वेश्वरी चारुशीलायै नमः ※ श्री हनुमते नमः

अथ श्री हनुमत्संहिता

श्री सीताराम रहस्य प्रकाशिका टीका

टीकाकार:—

रसराजैकनिष्ठ अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री अग्रदेवाचार्य वंशावतंस
श्री स्वामी सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणारविन्द
मकरन्द रसलम्पट श्री श्री १०८ श्रीस्वामी जानकीशरण
जी महाराज (मधुकर) श्री चारुशीला मन्दिर,
श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी-२२४१२३
फोन नं०—३२७५४, (०५२७८)

श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ✻ श्रीमते रामानन्दाय नमः ✻
✻ श्री सर्वेश्वरी चारुशीलायै नमः ✻ श्री हनुमते नमः ✻

अथ श्री हनुमत्संहिता

श्री सीताराम रहस्य प्रकाशिका टीका

टीकाकारः—

श्रीसीताराम रहस्य समुद्रपोतायमान श्री रसराजाम्बुज दिनमणि आचार्य प्रवर अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री अग्रदेवाचार्य वंशावतंस श्री स्वामी सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणारविन्द मकरन्द रसलम्पट श्री श्री १०८ श्रीस्वामी जानकीशरण जी महाराज (मधुकर) श्री चारुशीला मन्दिर,

श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी-२२४१२३

फोन नं०—३२७५४, (०५२७८)

सहयोगकर्त्ता-

डा० श्रीपुरुषोत्तम दूबे उर्फ श्री पुरुषोत्तम शरणजी
ग्राम-विष्णुपुरा, पो०-परमेश्वरपुर, जि० गोरखपुर, उ०प्र० (भारत)

संशोधकः—

श्रीअवधधाम वासी, दासानुदास- बासुदेव दास
श्री चारुशीला मन्दिर, श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी

(सम्वत २०५५, माघ शुक्ल ५, बसन्त पञ्चमी)

प्रथम संस्करण-१०००] सन् १९९८ ई० [मूल्यः- ३१) मात्र

✱ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ✱ श्रीमते रामानन्दाय नमः ✱

✱ श्री सर्वेश्वरी चारुशीलायै नमः ✱ श्री हनुमते नमः ✱

ध्यान मूलं गुरुमूर्ति, पूजामूलं गुरुपदम् ।
मन्त्र मूलं गुरुर्वाक्य, भक्तिमूलं गुरुकृपा ॥
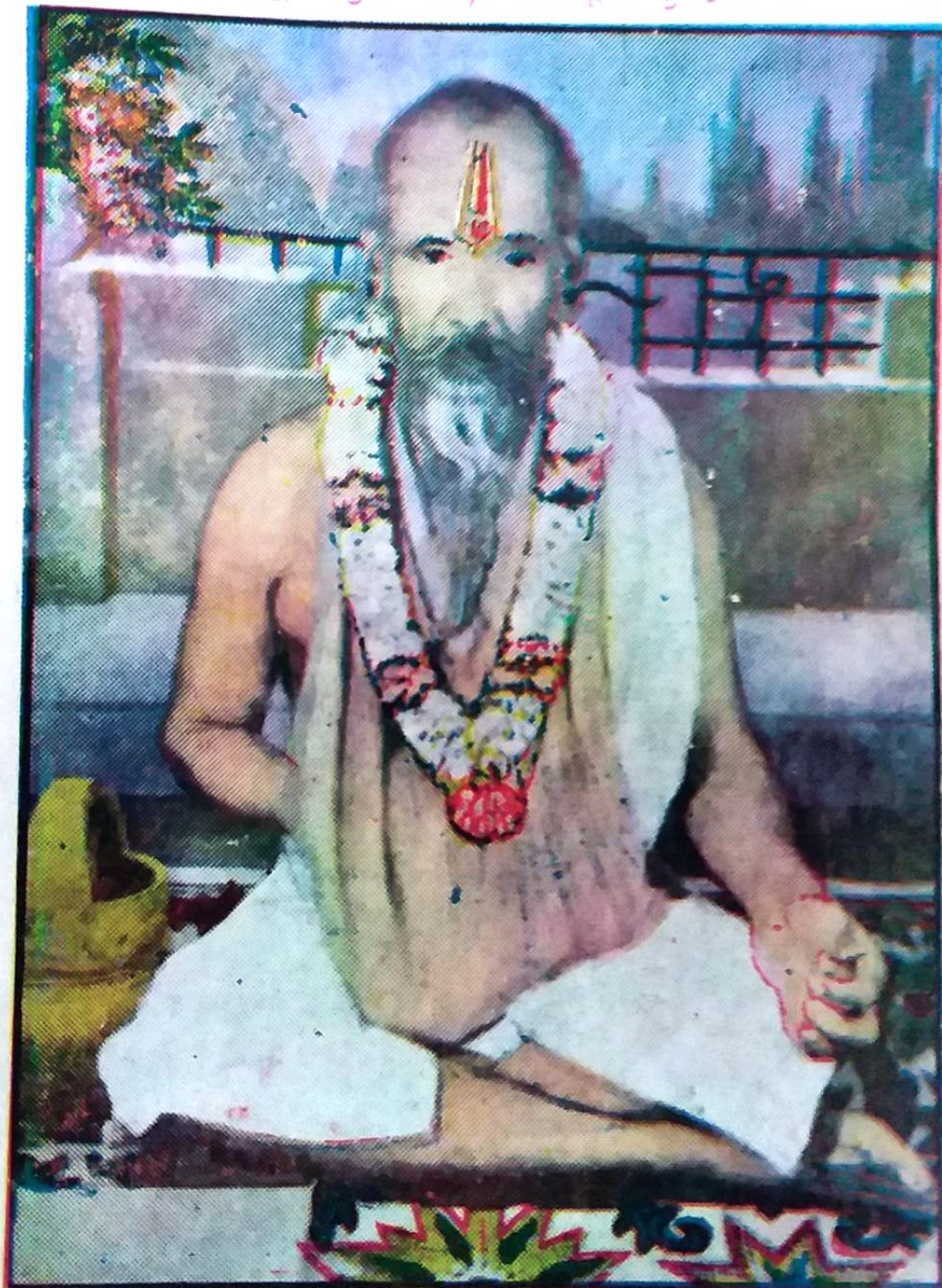
"अथ श्रीहनुमत्संहिता" के टीकाकार:—
रसराजैकनिष्ठ अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री अग्रदेवाचार्य वंशावतंस
श्री स्वामी सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणारविन्द
मकरन्द रसलम्पट श्री श्री १०८ श्रीस्वामी जानकीशरण
जी महाराज (मधुकर) श्री चारुशीला मन्दिर,
श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी-२२४१२३

अर्थ—इष्ट सेवा को ही अपना प्रयोजन जानने वाला, सेवा में सर्व कर्त्तव्य सामर्थ्य सम्पन्न दो भुजा वाले इष्ट का अंशत्व; इष्ट देवता से प्रेरित अपने निजी स्वरूप को जानना चाहिए ॥४१॥

मू०-सर्वभूतदयाचैव सर्वत्र समदर्शनम् ।
अन्यत्रानिन्दनं चैव स्वेशेस्नेहाधिकं तथा ॥४२॥

अन्वयः—च स्वेशेस्नेहाधिकं सर्वभूतदया तथा सर्वत्र समदर्शनं च अन्यत्रानिन्दनम् ॥४२॥

अर्थः—उपरोक्त प्रकार से आत्मा के स्वरूप को कह कर के अब आत्मा के प्राप्त स्वरूप को कहते हैं कि अपने इष्ट देवता श्री सीताराम जी में स्नेह, प्रेम ममता, आशक्ति की अधिकता पूर्वक प्राणिमात्र पर दया करना, इसी प्रकार सबसे समदृष्टि रखते हुये और अन्य किसी की निन्दा न करें और ॥४२॥

मू०-गुरावीश्वर बुद्धिश्च तदाज्ञा परिपालनम् ।
स्वेशस्य तज्जनानां च सेवनं माययाविना ॥ ४३ ॥

अन्वयः—च गुरौः ईश्वर बुद्धिः तदाज्ञा परिपालनम् माययाविना स्वेशस्य च तज्जनानां सेवनम् ॥४३॥

अर्थः—श्री सद्गुरुदेव जू में ईश्वर बुद्धि रखना (क्योंकि इष्ट की कृपा-दृष्टि ही मूर्तिमान होकर गुरु रूप में मिलती है) और गुरु की आज्ञा सम्यक् प्रकार से पालन करना और छल, कपट, स्वार्थ, सकातमता माया को छोड़कर इष्ट देवता श्री सीताराम जी का और उनके भक्त जनों का हितमय सेवा करना ॥४३॥

"करे स्वामि हित सेवक सोई । दूषन कोटि देइ किन कोई ॥"

मू०-प्रभोः कृपावलंबित्वं भोक्तब्यं तत्सर्मापितम् ।
सच्छास्त्रेषु च विश्वासः प्राप्त्युपायमिहोच्यते ॥४४॥

अन्वयः—प्रभोः कृपावलंवित्वं तत्सर्मापितं भोक्तब्यं च विश्वास सद्-शास्त्रेषु इह उपायं उच्यते ॥४४॥

अर्थः—भगवान की कृपा भगवान के मन्त्र रूप में गुरु परम्परा से आया हुआ । श्री सद्गुरु द्वारा प्राप्त कर गुरु मन्त्र के रूप में गुरु-निष्ठा ही भगवान के कृपा का अवलम्बनत्व है । जो मन्त्रार्थ के ज्ञान रूप में आत्मा का परमात्मा से

सम्बन्ध पैदा करता है। यही शरणागति है, जिसमें आत्मा को चढ़ने के लिये छः सीढ़ी हैं :—

१—अनुकूल का संकल्प करे।

२—प्रतिकूल का त्याग करना।

३—रक्षा करेंगे विश्वास करना।

४—रक्षक रूप में स्वीकार करना।

५—अपनी सम्पूर्ण जिम्मेदारी भगवान को दे देना।

६—भगवान की जिम्मेदारी के लिये रोवें।

अर्थात् भगवान् की सेवा के लिये उत्कंठा बनावे। ये छः सीढ़ियाँ भगवान् के घर जाने का रास्ता है। इससे भगवान् आत्मा को स्वीकार करते हैं, जो भगवत् धर्म के रूप में आत्मा से आचरण करने योग्य है। इस स्थिति में वैष्णव अपने प्रारब्ध के सम्पति भगवान को अर्पण कर के तब प्रसाद रूप में भक्तों को भोजन कराकर तब भोजन करे। भगवत् गुण परक सद्शास्त्रों में विश्वास करें। यह प्रारब्ध के अन्दर भक्त का भगवान् के प्राप्ति का उपाय कहा गया है ॥४४॥

मू०-प्रारब्ध परिभुज्याथभित्त्वा सूर्य्यादि मण्डलम्।
प्रकृतेर्मण्डलं त्यक्त्वा स्नात्वा तु विरजांभसा ॥४५॥

अन्वयः—अथ प्रारब्धं परिभुज्य सूर्य्यादि मण्डलं भित्त्वा (तथा) प्रकृतेर्मण्डलं त्यक्त्वा तु विरजां भसा स्नात्वा ॥४५॥

अर्थः—अर्थ पञ्चक के अन्दर उपाय स्वरूप कहने के बाद अब लोक धर्म का मोक्ष तथा भगवत्धर्म का मोक्ष भेद लिखते हैं। यहाँ पर लोक धर्मानुसार अर्चिरादि मार्गों का वर्णन है। (गी० अ० ८ के २४ से २६ तक देखें। और २७ में वर्णन है कि शुक्ल कृष्ण गति को जानता हुआ भी भगवत् शरणागत (सेवक-सेव्य भाव युक्त) शरणागत योगी मोह में नहीं पड़ कर शरणागति का भरोसा करता है तो गी० अ०—१२ श्लोक ६ के अनुसार शरणागति करने वाले को भगवान् शीघ्र स्वयं उद्धार करने वाले होते हैं (गी०अ० १२ के ७ श्लोकानुसार) जैसा कि मुमुक्षु आत्मा को प्रारब्ध भोगने के बाद (प्रारब्ध शरीर छूटने पर) प्रकृति के अन्दर देव मण्डल स्वरूप (दैवी प्रकृति) सूर्य्यादि मण्डलों को भेदन करके तब प्रकृति के सात

आवरणों का मण्डल त्याग करके उसके बाद विरजा नदी के जल में स्नान करके, पञ्च तत्त्वों के पाँच आवरण, अहंकार और महातत्त्व के दो आवरण ये ही ५+२ = ७ प्रकृति के आवरण हैं। इसके बाद असंख्य तीन गुणों के आवरण को पार करके तब विरजानदी में स्नान होता है ।।४५।। इसके बाद वह मुमुक्षु—

मू०-सवासनं देहद्वयं विसृज्य विरजोभवत् ।
अतिवेगेनतांतीर्त्वा प्राप्य साकेतकं तथा ।। ४६ ।।

अन्वयः—सवासनं देहद्वयं विसृज्यविरजोभवत् अतिवेगेन तां तीर्त्वा तथा साकेतकं प्राप्य ।।४६।।

अर्थः—संसारिक वासनाओं से सहित सूक्ष्म शरीर जो स्वप्नावस्था जो १७ तत्त्व का है, उसके सहित फिर, कारण शरीर सुषुप्ति अवस्था दो तत्त्व (आवरण और विक्षेप) को त्यागकर विरजा नदी में आत्मा कूद जाता है, तब अतिबेग से पार जाने पर फिर भगवत् पार्षदों द्वारा बड़े सन्मान के साथ ले जाया जाता है, तथा साकेत को प्राप्त कर लेता है ।।४६।। सनमान के आगे कहते हैं।

मू०-प्रविश्य राजमार्गेण सप्तावरण संयुतम् ।
नानारत्नमयं दिव्यं श्री रामभवनं शुभम् ।। ४७ ।।

अन्वयः—नानारत्नमयं सप्तावरण संयुतं दिव्य शुभं श्री रामभवनं राजमार्गेण प्रविश्य ।।४७।।

अर्थ—उस श्री साकेत नगर के मध्य अनेक प्रकार के रत्नमय सात आवरण वाला दिव्य शुभ श्रीराम महल में राजमार्ग के द्वारा प्रवेश करके ।।४७।।

मू०-तत्र श्री भरतादिभिस्सेब्यमानं सदा प्रभुम् ।
बिराजमानं बैदेह्या रत्नसिंहासने शुभे ।। ४८ ।।

अन्वयः—तत्र शुभे रत्नसिंहासने सदा भरतादिभिः सेब्यमानं बैदेह्या प्रभुं ।। ४८ ।।

अर्थः—श्री रामभवन के मध्य कल्याणमय रत्नमय सिंहासन में भरत जी से लेकर अनन्त पार्षदों से सदा सेवित बैदेही जी के प्रीतम को ।।४८।।

मू०-स्वभावनया श्रीरामं प्राप्य सर्व सुखप्रदम् ।
परानन्द मयोभूत्वाऽवस्थानं फल मुच्यते ।। ४९ ।।

अन्वयः—सर्वसुखप्रदं स्वाभावनया श्रीरामं प्राप्य परानन्दमयः भूत्वा अवस्थानम् फल मुच्यते ॥४९॥

अर्थः—जो सभी प्रकार के सुख देने वाले हैं, उन श्रीराम जी को अपनी भावना के अनुसार प्राप्त करके महाआनन्दमय होकर ठहरना, यह प्राप्ति का फल कहा जाता है ॥४९॥

मू०—अनात्मन्यात्म बुद्धिस्तुस्वात्म शेषत्वभावना ।
भगवत्दासवैमुख्यं तदाज्ञोल्लंघनं तथा ॥ ५० ॥

अर्थः—अब विरोधि स्वरूप बताते हैं, नाशवान शरीर में आत्मबुद्धि और उस शरीर से पैदा हुए पुत्रादिकों में शेषत्व बुद्धि (अर्थात् सम्बन्ध बुद्धि) भगवत् भक्तों को पराया जानना, तथा देखना, विपरीत आचरण करना, सन्तों की आज्ञा का उलंघन करना ॥ ५० ॥ और

पञ्च तत्त्वों का शरीर आत्मा नहीं है, क्योंकि पञ्चतत्त्व भोजन नहीं करता है, पञ्चतत्त्वों के द्वारा आत्मा को भूख, पियासा, सुख-दुख, होता है । इसलिए पञ्च तत्त्वों का शरीर आत्मा नहीं है । अपने कर्मों का फल देवताओं द्वारा दिया हुआ भोगने वाला ईश्वर अंश चैतन्य शक्ति है । परन्तु पञ्च तत्त्वों को सब जानते हैं, उस आत्मा को सब नहीं जानते हैं, भगवान् की कृपा मूर्ति श्री गुरु महाराज के द्वारा आत्मा अपने सहज स्वरूप को जान सकता है, उस अवस्था में शरीर को अपना स्वरूप न मानकर परमात्मा के लिए सुख-दुःख आदि का सहन करता है । जिस तरह से अविवेकि (संसारी भक्त) अपने शरीर की सेवा करते हैं, उसी प्रकार भगवत् शरणागत गुरु द्वारा प्राप्त विवेक युक्त विवेकि भगवान् की सेवा करता है ।

"सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं । जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहिं ॥"

तो रघुनाथ जी भी आँख के गोलक की जैसे पलक सेवा करती हैं ।

"जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे । पलक विलोचन गोलक जैसे ॥
तुम पर अस सनेह रघुबर के । सुख जीवन जग जस जड़ नर के ॥"

मू०—ब्रह्मशेन्द्रादि देवानामर्चनं वन्दनादिकम् ।
असच्छास्त्राभिलाषश्च सच्छास्त्रस्यावमाननम् ॥ ५१ ॥

अर्थः—ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र आदि देवताओं में भौतिक सकामताओं से पूजा वन्दनादि कर्तव्य तथा असच्छास्त्रों की पढ़ने की चाहना और सच्छास्त्रों का अपमान करना ।। ५१ ।।

मू०-मर्त्यसामान्य भावेन गुर्वादौनाति गौरवम् ।
स्वातंत्र्यं चाप्यहंकारो ममकारस्तथैव च ।। ५२ ।।

अन्वयः—मर्त्यसामान्य भावेन गुर्वादौ अतिगौरवं न तथा अहंकारः च ममकारः च स्वातन्त्र्यं ।।५२।।

अर्थः—जनमने-मरने वाला साधारण मनुष्य की तरह से गुरू जी आदि भगवत् शरणागतों में उपकार दृष्टि से भगवान् से बढ़कर अतिगौरव न होना और अहंकार तथा ममकार अपना करके अपने को स्वतन्त्र मान लेना ।।५२।।

मू०-द्वादशी विमुखत्वं च ह्यकृत्यकरणं तथा ।
ज्ञेयं विरोधिरूपं तु स्वस्वरूपस्य सर्वदा ।। ५३ ।।

अन्वयः—तथा द्वादशी विमुखत्वं च ह्यकृत्यकरणं सर्वदा स्वस्वरूपः तु विरोधिरूपं ज्ञेयं ।।५३।।

अर्थः—द्वादशी के व्रत से विमुख होना और बुद्धि के निश्चय पूर्वक न करने योग्य कार्यों को करना, इसे हमेशा स्वस्वरूप (सहज स्वरूप) का विरोधि रूप को समझना चाहिए ।।५३।।

मू०-एवं तत्व परिज्ञानादाचार्यानुग्रहेणहि ।
तत्क्षणे जानकीनाथे प्रीतिर्नित्याभिजायते ।। ५४ ।।

अन्वयः—एवं आचार्यानुग्रहेणहि तत्त्व परिज्ञानात् तत्क्षणे जानकीनाथ नित्या प्रीतिः अभिजायते ।।५४।।

अर्थः—इस प्रकार सद्गुरु के कृपा अनुग्रह से ही तत्त्व का सम्यक् प्रकार ज्ञान प्राप्त कर लेने से उसी क्षण में श्री जानकी नाथ जी में नित्य जो अनुराग है वह पैदा हो जाती है ।।५४।।

मू०-उपादिशेच्च सम्बन्धं परीक्ष्य विधिवज्जनम् ।
वैपरीतांचनो कार्यं कदाचिद्भाव ज्ञातृभिः ।। ५५ ।।

अन्वयः—विधिवज्जनं परीक्षा च सम्बन्धं उपादिशेत् च भावज्ञातृभिः कदाचिद् वैपरीत्यं न कार्यं ।।५५।।

अर्थः—इस प्रकार विधिपूर्वक आश्रित जनों को अच्छी तरह से परीक्षा करके तब सम्बन्ध का उपदेश करें, भाव का मर्मज्ञ विद्वान के साथ कभी भी इसके बिपरीत कार्य न करें ॥५५॥

मू०—अस्याधिकरिणोलोके केपि केपि महामुने ।
अतः सर्व प्रयत्नेन गोपनीयं सदैवहि ॥ ५६ ॥

अन्वयः—हे महामुनेः लोके अस्य अधिकारिणः केपिकेपि (सन्ति) अतः सर्व प्रयत्नेन स सदैवहि गोपनीयं ॥५६॥

अर्थः—श्री हनुमान जी कहते हैं कि हे महामुनि श्री अगस्त जी इस संसार में इस रहस्य के अधिकारी कोई-कोई होते हैं । इसलिए सभी प्रकार के प्रयत्नों से नित्य ही इस बात को छिपाकर रखना चाहिए ॥५६॥

मू०—यइदं धारयेद्भावं संबंधाख्यमनुत्तमम् ।
धन्य धन्यतमो लोके स एवैको विनिर्मितः ॥ ५७ ॥

अन्वयः—यः इदं अनुत्तमं सम्बन्धाख्यं भावं धारयेत् स लोके एको एक धन्य धन्यतमो विनिर्मितः ॥५७॥

अर्थः—जो भगवत्भक्त महाकृपात्र इस सर्वोत्तम सम्बन्ध नामक भाव को धारण करता या करेगा, वह लोक में एक ही धन्य-धन्यतम भगवान द्वारा निर्मित हुआ है ॥५७॥

मू०—श्रुत्वा हनुमतोवाक्यं परमानन्द दायकम् ।
प्रशस्य बहुधातं वै प्रणभ्य च पुनः पुनः ॥ ५८ ॥

अन्वयः—परमानन्द दायकं हनुमतो वाक्यं श्रुत्वा तं वै बहुधा प्रशस्य च पुनः पुनः प्रणभ्यं ॥५८॥

अर्थः—अब श्री अगस्त जी महाराज श्री हनुमान जी की स्तुति करते हैं। परम आनन्द को देने वाले श्री हनुमान जी के बचन को सुनकर के श्री हनुमानजी को बहुत प्रकार से प्रसंशा किये, और बार-बार प्रणाम किये ॥५८॥

मू०—तदाज्ञामधिगम्याथ कृतार्थश्छिन्न संशयः ।
जगाम स्वाश्रमं विप्रो मुनिवर्य गणावृतम् ॥५९॥

अन्वयः—अथ विप्रः तदाछिन्न संशयः कृतार्थः आज्ञां अधिगम्य मुनीवर्यगणावृतं स्वाश्रमं जगाम ॥५९॥

अर्थः—इसके बाद वे ब्राह्मण देवता श्री अगस्त जी निःसंशय होकर कृतार्थ हो गये, तथा श्री हनुमान जी की आज्ञा पाकर मुनि श्रेष्ठ अगस्त जी मुनियों के समाज से घिरे हुये अपने निजी आश्रम को चले गये ॥५९॥

इति श्री हनुमत्संहितायां परम रहस्ये हनुमदगस्त्य सम्वादे
सर्वं सारांशसारे श्रीसीताराम सम्बन्धोनाम षष्टोध्यायः
श्रीमज्जनकनन्दिनी रघुनन्दनार्पणमस्तु ॥६॥

श्रीं सीताराम रहस्य समुद्रपोतायमान् श्री रसराजाम्बुज दिन मणि आचार्य
प्रवर अनन्त श्रीविभूषित स्वामी श्रीअग्रदेवाचार्यं वंशावतंस श्री स्वामी
सियाशरणजी महाराज (मधुकर) तच्चरणारविन्द मकरन्द रस-
लम्पट श्रीजानकी शरण जी महाराज (मधुकर) द्वारा श्री-
'हनुमत्संहिता' श्री सीताराम रहस्य प्रकाशिका टीका
षष्टमोऽध्याय सम्पूर्णः ॥ ६ ॥

ऋग्वेद १०-६४-७

प्रवो वायुं रथ युजं पुरन्धि स्तोमैः,
　　कृणुध्वं　सख्याय　पूषणम् ।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि,
　　क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः ॥

रहस्य मार्तण्ड भाष्यम्—अथ रामः स्ववक्तव्यमाह-प्रेति । वो युष्माकं बानराणां पुरंधिपुरोअग्रेधीयते इति तमग्रेसरं सर्वममपार्षद समूहमध्ये प्रधानम्। रथयुजं शरीरधारिणं वायुं वायुदेवं वानररूपं वायुदेवांशम् ममप्राण प्रियकरं हनुमन्तं इत्यर्थः। (अथवा मम प्राण प्रिया सीता तस्याः प्रधान अंशभूता प्रधान-सुखी श्रीचारुशीला सा एव अयं बानररूपः तं) सख्याय मैत्री प्रयुक्त कार्याय।

सुग्रीवेण मैत्री स्वीकृत्य यत्सीतान्वेषणादिकं कार्यमङ्गीकृतं तदर्थं मित्यर्थः। प्रस्तोमैः प्रकृष्टैः स्तवै बल गुण रूपादि वर्णन रूपैः पूषणं पुष्टिकार्यं साधनोत्साहं कृणुध्वं सम्पादयत् । मदीय कार्यार्थं । इमं स्तुतिभि रुत्साहयतेत्यर्थः। तत्समर्थनायाह–हि यस्मात् ते प्रस्तावा देवस्य परमेश्वरस्य सवितुः सर्वं जगत् कारणस्य सवीमनि सन्तान भूतेऽस्मिन्ल्लोके सचेतसः सहृदयस्य महामनसः सचेतनस्य पुरुषस्य क्रतुं क्रियां संकल्पं च सचन्ते पुरुषार्थसिद्धि प्रति गमयन्ति । स्तुतिभिर्हि महतां शक्तिस्तथा जागर्ति यथा ते पुरुषार्थमवश्यं साधयन्तीत्यर्थः। अतएव मत्कार्य सिद्धयथमयं महामना हनुमान वश्यं स्तोतव्य इतिभावः।

-: दीपिका टीका :-

उक्त रीति से वानरों को सम्बोधित कर श्रीरामजी कहते हैं कि आप लोगों के अग्रेसर मेरे भक्तजनों में प्रधान भूत ये श्रीहनुमान्‌जी वायु देवांश मेरे प्राणप्रिय कार्यकर्ता हैं । सुग्रीव द्वारा स्वीकृत मेरे सीतान्वेषणादि कार्य केलिये आप लोग उत्कृष्ट स्तुतियों से उत्साहित करें। क्योंकि स्तुति वाक्य सर्व जगत् कारण परमात्मा के सन्तान रूप इस लोक में महामना पुरुषों को पुरुषार्थ सिद्धि में प्रेरक होते हैं । पुरुषार्थ की सिद्धि तक पहुँचने की प्रेरणा देते हैं । इस मन्त्र से श्रीरामजी द्वारा श्रीहनुमान्‌जी को सर्व पार्षद शिरोमणि पद प्रदाता दिखाया है । यह वेद द्वारा श्री हनुमान जी का सर्व पार्षद शिरोमणित्व प्रत्यक्ष है ।

ऐसे ही श्री नीलकण्ठ जी लिखते हैं—

भो देवाः वः युष्माकं मध्ये वायुं वायुपुत्रं रथयुजं देहधरं पुरः धीयत इति पुरःसरं स्तोमैः स्तुत्या कृणुध्वं सख्याय सखि वत कर्याय पूषणं पोषणं मत्कार्यार्थं इमं स्तुवध्वमित्यर्थः॥ हि यतः ते स्तोमासः सवितुं देवस्य सवीमनि प्रसवे लोके क्रतुं संकल्पं सचन्ते संपादयन्ति । सचितः चेतनस्य पुंसः सचेतसः सहृदयस्य स्तुतयः सहृदयं कार्ये प्रवर्तयन्तीत्यर्थः॥

इस व्याख्या में भी श्री हनुमान जी का पार्षद प्रमुखत्व ही अर्थ श्रीनीलकण्ठजी ने व्याख्या की है स्वयं श्रीरामजी ने अपने पार्षदों द्वारा श्रीहनुमान्‌जी की प्रमुखता दिलाया है, अतः अन्य सर्वेश्वरी नहीं हो सकती हैं।

※ श्री हनुमते नमः ※

卐 श्री हनुमान--चालीसा 卐

दोहा— जय जय जय सियराम रसिक, महावीर हनुमान ।
अंजनि नन्दन पवनसुत, दया करुणा कि खान ॥ १ ॥

जय जय जय हनुमान कृपाला । सिय पिय कृपादृष्टि प्रतिपाला ॥
कृपादृष्टि मूरति तनु धारी । प्रणत जनन्ह के भव भय हारी ॥
ऐश्वर्य देश मह परम विरागी । युगल माधुर्य महा अनुरागी ॥
विनु तव कृपा न अवध प्रवेशा । यत्न कोटि कोउ करे हमेसा ॥
सनकादि ब्रह्मादि मुनीसा । ब्रह्म तत्त्व मग्न अहरनीसा ॥
सो सब गुरु हनुमन्तहिं मानी । सिय राम तत्त्वहिं कुछ जानी ॥
लहि तव कृपा स्वरूप सम्हारा । सिय पिय सेवा चित्तहि धारा ॥
छन छन लखि सियपिय हियझाकी । जग से सदा रहे मन माखी ॥
जीवन मुक्त अव्याहतगति पाई । तीन लोक सिय पिय गुन गाई ॥
ऐसे हनुमत को चित्त ध्यावै । सो नर जीवन मुक्त हो जावै ॥
जेहि जन पर हो कृपा तुम्हारी । कृपा डोरि में सो बन्धारी ॥
जेहि छण राम सम्बन्ध दृढाई । अनेक जन्म कै बिगरी बनाई ॥
शरीराभिमान लंकहि जराई । सिय अंशहि स्वरूप जनाई ॥
तेहि को वैभव से भय लागे । तव सिय चरण प्रेमहिं जागे ॥
जागत सोवत सिय गुन गावै । मन, बुद्धि, चित्त रामहि चढ़ावै ॥
दोउके कृपा समुझि मनमाहीं । युगल चरण पद सदा सोहाहीं ॥
परम लक्ष्य मानव जीवन को । सहजहि भक्ति होय सिय पिय को॥
मोहि अधम अलायक जानी । करहु कृपा सेवक जन जानी ॥
सिय पिय केलि हृदय विहारा । मन नयनन्ह ते निरखौ उदारा ॥
तीन रूप सेवा हितु धारी । चारुशीला प्रसाद सुखकारी ॥
चन्द्रकान्ति अरु शत्रुजित नन्दिनी । उभय पक्ष सदा अनिन्दिनी ॥
सकल वैभवादि परे सियरामा । शुद्ध सच्चिदानन्द सुख धामा ॥

सच्चिदानन्द लीला अनुरागी । सकल वैभव से परम विरागी ।।
आतमस्वरूप सिय चरणहि लागी । अंश अंशहि जीव रूप सो मानी।।
राम कार्य वानर तन धारी । दास भाव परम सुखकारी ।।
सिय पिय रूप हृदय में धारी । सकल कार्य सदैव सम्हारी ।।
अमित बुद्धि वल तेज अपारे । केशरी अंजनि नयन सितारे ।।
लाँघि समुद्र लंकहि जराई । जनक सुता के सुधि लाई ।।
बल पौरूष के नही अभिमाना । राम कृपा के है अभिमाना ।।
यह अभिमान भूल न जावै । ताते सिय पिय नित्यहि ध्यावै ।।
निगमागम प्राण सम राखे । नित्य सगुन सिय रामहि भाखे ।।
चार अवस्था तीन कालहि भाई । हनुमत कृपा विनु जान न पाई।।
हनुमत कृपा पूरण हो जाई । सिय पिय केलि हृदय अनुभाई ।।
जन्म कर्म सब दिब्यहि पाई । दिब्य स्वरूप लखहि सुखदाई ।।
ताके दर्शन जो जन करहीं । जीवन मुक्त सदा सुख लहहीं ।।
ऐसे परम उदार हनुमाना । सकल मान रहित सुख धामा ।।
परम दयालु कृपाल हनुमन्ता । कारण केहि बिसारो सुखवन्ता ।।
शरण शरण अव शरण पुकारों । गुन अवगुन सब देहु बिसारों ।।
" बासुदेव " करें कर जोरी । हनुमत सुनहु यह बिनती मोरी ।।
भौतिक वासना बिष सम लागे । होय कृपा सिय पद अनुरागे ।।
बमन सम त्यागौं संसारा । सिय पिय रूप सदा हिय धारा ।।
केवल कृपा अवलम्ब तुम्हारा । साधन जप तप योग बिसारा ।।

दोहा— हृदयाकाश भक्ति भू, सिय पिय केलि विहार ।
आदि गुरु हनुमत कृपा, सरस सुखद हिय हार ।। १ ।।

हनुमत कृपा हिय धारिके, चालीसा करे पाठ ।
ताके हृदय में सुझे, सेवा ललित सुठाम ।। २ ।।
"बासुदेव" के चाह यहि, और चाह जरि जाय ।
गुरु कृपा सिया रामचरण, दृढ़ निष्ठा हो जाय ।। ३ ।।

॥ श्री सद्गुरवे नमः ॥

श्री सद्गुरु चालीसा

दो०–तत् पद वाच्य रामसिय, प्रेरणा ओमहि जान ।
सत् पद वाच्य आत्मा, गुरु निष्ठा से मान ॥ १॥
कृपा दृष्टि सियराम के, गुरु बनि आयो लोक ।
ताके चरण शरण बिनु, आत्मा न हो विशोक ॥ २॥

चौपाई—

बन्दौं गुरु पद कमल सुखदाई । जे ही ब्रह्मा विष्णु भी ध्याई ॥
गुरु पद महिमा अकथ अतीवा । कहि न सकइ सारद अरु शीवा ॥
ते सज्जन अतिहि बड़ भागी । जाके मन गुरु पद अनुरागी ॥
अतिहि अँधियार हिय आकाशा । गुरु बाणी सूर्यहि प्रकाशा ॥
प्राकृत सूर्य दोष से युक्ता । दिब्य सकल दोषों से रहिता ॥
कदापि जाके हिय बस जाई । गुप्त प्रगट सब देखहिं भाई ॥
गुरु पद सेवक देखहिं कैसे । निज सम्पत्ति संसारि जैसे ॥
आत्मा धन धनी भगवाना । गुरु कृपा ते सहजहिं जाना ॥
संधिनि होय सम्बन्ध कराई । होय संदीपनि प्रकाश जनाई ॥
गुरु शरण बिनु नाम जो जपहि । सो भी महिमा वेद न कथहि ॥
सहज भाव गुरु शरणहि जाई । प्रेम सनेह के बीजहि पाई ॥
निःस्रोत सनेह हृदयमय होई । सियराम रीझहिं सुख होई ॥
ताके भेद वेद नहि जानहि । जैसे क्षेत्र क्षेत्रज्ञ न जानहि ॥
जय गुरुदेव दयाल कृपाला । सत्य संध दीनन्ह प्रतिपाला ॥
होय दीन शरणहि जो आवे । सियराम पद प्रेम बढ़ावे ॥
सियराम के कृपा स्वरूपा । मानव देह धरे अनूपा ॥
नाद सृष्टि के परम प्रकाशी । बिन्दू सृष्टि से सदा उदासी ॥
सियराम पद सरस अनुरागी । जागत सोवत सीयगुन भाखी ॥
शरीर आशक्ति लंकहिं बताई । षड्बिकार राक्षस समुदाई ॥
युगल मन्त्र संजीवन मूरी । करि सुकृपा हृदय भरि पूरी ॥

अथ पञ्चक के दिव्य स्वरूपा । बिनु तव कृपा न पाव अनूपा ।।
सियराम भक्ति सुदृढ़हि होई । ताते आवा गमन न होई ।।
पाय कृपा स्वरूप सम्भारी । भाव भावना होय उजारी ।।
जन्म कर्म सब दिब्यहि जानी । सकल भाव सेवहिं सुख मानी ।।
भाव प्रदेश हृदय के माहीं । अष्टयाम सेवा सुख पाहीं ।।
जय गुरुदेव सरस सुखवन्ता । सिय पिय केलि सदा मनवन्ता ।।
स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरा । मायामय दुःख के जन्जीरा ।।
तव कृपा ते सहज नशाई । विरुज शरीर पावे सुखदाई ।।
सहज स्वरूप तुरीयहिं जानी । अहरनिशी सेवे सुखमानी ।।
दम्पति मधुर मनोहर जोरी । लखी रति-पति सब भये विभोरी
ऐसहि छबि बसे मन माही । 'रूपशीला' सुख और न चाही ।।
कारण रहित गुरुदेव कृपाला । सियराम रूप के परम रसाला ।।
हर्षि हर्षि सियवर गुन गावत । अनन्यता के भाव दरसावत ।।
सिय पिय नाम रटत रटावत । श्रावण भादों मेघ बरसावत ।।
सिय गुन गावत अति सुखमानहिं । भौतिक सुख तृण सम जानहिं ।।
धाम निष्ट परम सुखकारी । करत करावत अति दुख हारी ।।
मोहि केवल गुरु की आसा । और सभी से रहो निरासा ।।
अनाथ जानि कृपा सुकीजै । नाम रूप लीला मन भीजै ।।
षट् विकार अतिसय बलवाना । ताते चित्त सुथिर न जाना ।।
"वासुदेव" कहत कर जोरी । विनती सुनिय गुरुदेव मोरी ।।

दो०- सौन्दर्य गुण सियराम के, सौन्दर्य शीला जू नाम ।
ताके कृपा प्रसाद लहि, जोव लहत विश्राम ।। १ ।।
ऐसी कृपा सुकीजिये, सीयराम रहस्य प्रवीन ।
युगल रस समुद्र में, मन मिन रहे लयलीन ।। २ ।।
युगल मन्त्र गुरु से लिये, किये नहीं सत्संग ।
राम रूप चीन्हें नहीं, कैसे लागे रंग ।। ३ ।।

सदाशिव संहितायां

श्रीराम मन्त्रस्यांशानि मन्त्राण्यन्यानि विद्धिच ।
हनुमता चार्येणाहो रामधाम सतां पदम् ॥१॥
श्रीजानक्याः पति सर्वे भजध्वं मङ्गलायनम् ।
राम मन्त्रेणायुधाभ्यां युक्ताः शुशुभिरे भुवि ॥२॥
सुर गुर्वादि गुरवो राम मन्त्रस्य सेवकाः ।
श्रीगुरो र्मारुतेः शिष्यो सुग्रीवश्च कपीश्वरः ॥३॥
श्रीरामस्या युधौ तप्तौ राम मन्त्रं व्यधारयत् ।
पञ्चाष्टादश संख्याता स्व सेन्याश्च हनुमतः ॥४॥
दीक्षिता स्तेन मन्त्रेण धनुर्वाणेन चांकिताः ।
हनुमच्छिष्यतां प्राप्तो महाराजो विभीषणः ॥५॥
रामायुधाभ्यां तप्ताभ्यां मंकितश्च स मुद्रया ।
तथा तस्य प्रजाः सर्वा चिन्हिता राम लाञ्छनैः ॥६॥
राजमार्ग मिमं विद्धि रामोक्तं जानकी कृतम् ।
यदृते चान्य मार्गास्तु चौराणां वीथिका यथा ॥७॥
आद्याचार्य हनुमन्तं त्यक्त्वा ह्यन्य मुपासते ।
क्लिश्यन्ति चैव ते मुग्धः मूलहा पल्लवाश्रिताः ॥८॥
श्री मैथिल्याश्च मन्त्रं हि श्री गुरु मारुतं महत् ।
सखो भावं दम्पतीष्ठं भुक्ति मुक्ति प्रदं सदा ॥९॥
श्रीजानकी सम्प्रदायं राम रास मनन्यताम् ।
ऋते केपि न यास्यन्ति वाञ्छित फल मेव च ॥१०॥
श्रीरामस्या युधौ तप्तौ जानकी मुद्रिकां विना ।
पारमेष्ठ्यं न प्राप्नोति ज्ञानादि साधनैरपि ॥११॥

मुद्रकः—सन्त तुलसीदास प्रिंटिंग प्रेस, अयोध्या ।